नई दिल्ली, बुधवार, 31 मार्च, 2021

संस्थापक-सम्पादक : स्व. माया‌राम सुरजन

सबका मालिक एक नहीं!

सोशल मीडिया पर राजधानी दिल्ली के शाहपुर जाट इलाके का एक वीडियो वायरल हो रहा है, जिसमें एक मंदिर में एक मज़दूर बल्लम से साईं प्रतिमा हटा रहा है और पास खड़ा एक आदमी उसे निर्देश दे रहा है कि बल्लम यहाँ नहीं, यहाँ मारो। यही व्यक्ति मूर्ति गिर जाने के बाद उसे भारी हथौड़े से तोड़ने की कोशिश करता हुआ भी दिखता है, लेकिन असफल होने पर हथौड़ा वह मज़दूर को थमा देता है। इस बीच यह व्यक्ति यह कहते हुए भी साफ़-साफ़ सुना जा सकता है कि साईं बाबा मुसलमान थे, उनकी मूर्ति का यहाँ क्या काम। वो तो 1918 में मर गए थे तो वो भगवान कैसे हो सकते हैं। मूर्तियां लगाना ही है तो चंद्रशेखर, भगत सिंह और राजगुरु की लगाना चाहिए। हालांकि इस बारे में स्थानीय लोगों का कहना है कि साईं प्रतिमा खंडित हो गई थी, उसे गांव वालों की सहमति से ही हटाया गया है। इसको लेकर कुछ लोग भ्रम फैला रहे हैं।

यह पहला मौका नहीं है जब साईं बाबा की मूर्ति को तोड़ने या नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गई हो। कुछ ही सालों पहले मेरठ के कनौड़ा गांव में साईं बाबा आश्रम की ज़मीन को लेकर उसके कर्ताधर्ताओं में विवाद हुआ तो एक पक्ष ने आश्रम परिसर में बनी कुटिया और साईंबाबा की 16 फीट ऊंची मूर्ति तोड़ दी थी। ग़नीमत यह रही कि इस मामले में कोई धार्मिक कारण नहीं था। इस घटना के एक साल बाद अमेठी के पकसरवा गांव में एक युवक ने साईं की मूर्ति को जलाने का प्रयास किया था। इसी साल काशी के एक शिव मंदिर में साईं बाबा की मूर्ति तोड़े जाने के बाद शंकराचार्य स्वरूपानंद सरस्वती के शिष्य अविमुक्तेश्वरानंद सरस्वती और उनके साथियों के ख़िलाफ़ पुलिस ने मामला दर्ज किया था। हालाँकि स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद का कहना था कि चूँकि वे विश्वनाथ गलियारे के लिए मन्दिरों को तोड़े जाने के विरोध में पदयात्रा कर रहे हैं, इसलिए यह कार्रवाई की गई।

शंकराचार्य स्वरूपानंद सरस्वती का ज़िक्र आया है तो यह याद करना लाज़मी होगा कि साईं बाबा का पहले-पहल विरोध उन्होंने ही शुरू किया था। 2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के कुछ समय बाद ही उन्होंने एक बयान देते हुए साईं बाबा को भगवान मानने से इनकार कर दिया था। साईं को हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मानने से भी उन्होंने मना कर दिया और कहा कि उनकी पूजा को बढ़ावा देना हिन्दू धर्म को बांटने की साजिश है। शंकराचार्य ने साईं बाबा के मंदिर बनाए जाने का भी विरोध किया। उन्होंने साईं बाबा के नाम पर कमाई किए जाने का भी आरोप लगाया और कहा कि साईं बाबा अगर वाकई हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतीक होते तो मुसलमान भी उनमें आस्था रखते। शंकराचार्य इतने पर ही नहीं रुके, कुछ समय बाद उन्होंने एक पोस्टर जारी किया जिसमें हनुमान जी को पेड़ की शाख से साईं बाबा की पिटाई करते हुए दिखाया गया था. हालांकि उन्होंने तब कहा था कि उनका विरोध साईं बाबा से नहीं, बल्कि उनके नाम पर फैलाए जा रहे पाखंड से है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और स्वामी रामदेव ने भी साईं बाबा का विरोध किया है। रामदेव के मुताबिक साईं बाबा एक महान व्यक्ति थे लेकिन उन्हें भगवान का दर्जा देना ग़लत है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह भैया जी जोशी ने कहा कि न तो खुद साईं बाबा ने अपने आपको, न ही समाज ने उन्हें भगवान माना। भैया जी का कहना यह भी था कि ऐसे मुद्दों पर विवाद खड़ा करके समाज में विद्वेष नहीं फैलाना चाहिए। संघ के प्रवक्ता मनमोहन वैद्य ने भी तब कहा था कि प्रत्येक हिन्दू को अपना आराध्य तय करने की आज़ादी है। ज़ाहिर है कि दोनों ही बयान उन लोगों को ध्यान में रखकर दिए गए जो संघ की विचारधारा को तो मानते हैं लेकिन साईं बाबा में भी आस्था रखते हैं। हालांकि हम लगातार यह देख ही रहे हैं कि किन मुद्दों पर कौन और कैसे विवाद खड़े कर रहा है और कौन समाज में विद्वेष फैला रहा है।

गौरतलब है कि साईं बाबा की आराधना तो बरसों से होती आ रही है और पहले कभी उस पर ऐसा विवाद नहीं हुआ। स्वरूपानंद जी जिस पीठ पर आसीन हैं, उसकी स्थापना करने वाले आदि शंकराचार्य ने सनातन धर्म के अनेक पंथों और सम्प्रदायों को परस्पर जोड़ने के लिए अपना जीवन होम कर दिया था। स्वामी स्वरूपानंद आदि शंकराचार्य के उत्तराधिकारी माने जाते हैं, लेकिन उनके बयान उन आदि गुरु के मूल्यों और सिद्धांतों के उलट अपना असर दिखा रहे हैं। यह देखना दुखद है कि जिस संत ने समाज को 'सबका मालिक एक' का सिद्धांत दिया, चंद लोग उसी संत की मूर्ति तोड़ने पर आमादा हो रहे हैं। याद रहे कि मूर्ति तोड़ने से पाखंड खत्म नहीं होगा। बल्कि धर्म के नाम पर समाज में फैलाए जा रहे विद्वेष और नफरत को दूर करने से पाखंड खत्म होगा।

माचिस की बाबत

बाज़ार से
माचिसें गायब हैं
दस दुकान ढूंढे नहीं मिल रही है एक माचिस
बड़ी आसानी से पायी जाती थी जो हर कहीं
परचून की पसरी दुकानों पर ही नहीं
पान के खड़े पगुराते खोखों पर भी
राह चलते
चाह बलते
मिल जाने वाली माचिस, मुस्तैद
एक मुँहलगी बीड़ी सुलगाने को
एहतियात से!
क्या हमने सारी माचिसें खपा डालीं
जला डालीं बुझा डालीं
गुजरात में, पिछले दिनों
आदमियों को ज़िन्दा जलाने में
आदमीयत का मुर्दा जलाने में?
जब माचिस मिलने भी लगेगी इफरात, जल्द ही
अगरबत्तियां जलाते
क्या हमारी तीलियों की लौ काँपेगी नहीं
ताप से अधिक पश्चात्ताप से?!

■ ज्ञानेन्द्रपति

पंचायत में भूमिका तलाशती महिला जनप्रतिनिधि

■ राजेश निर्मल

मौसम में बदलाव के लक्षण नजर आने लगे है। मौसम में उमस और गर्मी के साथ साथ पंचायत चुनाव ने भी दस्तक दे दी है। उत्तर प्रदेश में पंचायती चुनाव इसी महीने मार्च में होने वाले थे लेकिन महामारी और बोर्ड परीक्षा के चलते इसे थोड़ा और बढ़ाना पड़ा। तारीखों के आगे बढ़ जाने से पंचायती चुनाव की दांव-पेंच, आंकलन और उठापटक कम नहीं हुई है। सब कुछ उसी गति से चल रहा है। गांव, मोहल्ले की बहस रोज़ चौराहे तक जाती है और शाम ढलने पर फिर गांव लौट आती है। इसी बहस में एक बहस हम भी छेड़ते है कि महिलाओं की वर्तमान पंचायतों में क्या भूमिका है? जिसके जवाब हम सुल्तानपुर उत्तर प्रदेश के बल्दीराय और इसौली इलाके कुछ गांवों के लोगो और पुरानी महिला ग्राम प्रधानों से बात कर के ढूंढते हैं।

भले ही देश की संसद में अब तक महिलाओं के 33त्न आरक्षण की मांग को पूरा करने में टालमटोल चल रही हो, लेकिन देश के पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33त्न आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। पंचायती राज मंत्रालय के आंकड़ों की माने तो देश के बहुत से राज्यों में महिलाओं के लिए आरक्षण 33त्न से बढ़ाकर 50त्न तक कर दिया है। हर दूसरे पद में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जा रही है। 73वें संविधान संशोधन 1992 के बाद से पंचायती राज में एक तिहाई आरक्षण को मंजूरी मिली बाद में जिसे बढ़ा कर कई राज्यों ने इसे पचास प्रतिशत तक किया है। जिससे सीधे तौर पर महिलाओं की भागीदारी में एक बड़ा चमत्कारी परिवर्तन देखने को मिला है। 73वें संशोधन के बाद से आज देश में 2.5 लाख पंचायतों में लगभग 32 लाख प्रतिनिधि चुन कर आ रहे हैं। इनमें 14 लाख से अधिक महिला ही हैं। जो कुल निर्वाचित सदस्यों का 46.14त्न है।

इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी होने के बावजूद भी जनप्रतिनिधि के रूप में महिलाएं पंचायत में अपनी भूमिका सशक्त रूप से निभा नहीं पा रही हैं। वह पुरुष प्रधान समाज में केवल चुनी हुई कठपुतली की तरह काम करने को मजबूर हैं। प्रधान और पंचायत सदस्य चुने जाने के बावजूद न तो वह किसी बैठक में हिस्सा ले पाती हैं और न ही किसी निर्णय में उनकी भागीदारी होती है। उनकी भूमिका केवल पुरुषों द्वारा लिए गए निर्णय पर अंतिम मुहर लगाने से अधिक नहीं होती है। ऐसे निर्णय जिनकी जानकारी स्वयं उन्हें नहीं होती है, पूर्व की भांति उनकी भूमिका घर की चारदीवारी के अंदर चूल्हे चौके तक ही सीमित रहती है।

पंचायत में पुरुष प्रधानता और उनकी दबंगई का आलम यह था कि कोई भी महिला जनप्रतिनिधि उस वक्त तक हमसे बात करने को तैयार नहीं हुई, जब तक हमने उनकी पहचान और क्षेत्र का नाम छुपाने का आश्वासन नहीं दे दिया। नाम और क्षेत्र की पहचान गुप्त रखने की शर्त पर सीतापुर (बदला हुआ नाम) गांव की साल 2010 की ग्राम प्रधान रमावती (बदला हुआ नाम) बताती हैं कि मुझे हमेशा से लगता था कि गांव का मुखिया या ग्राम प्रधान कोइ पुरुष ही होता है। मेरी कल्पना में नहीं था कि कोई महिला भी कभी प्रधान हो सकती हूं। लेकिन जब हमारा गांव महिला रिजर्व सीट घोषित किया गया तो पंचायत पर आधिपत्य रखने वाले दबंगों ने चुनाव में मुझे खड़ा कर दिया और मैं प्रधान बनी। लेकिन मेरे अनुभव की बात करे तो मुझे आज भी लगता है सिर्फ़ आरक्षित सीट हो जाने से प्रतिनिधित्व महिलाओं के हाथ में नहीं आता। प्रधानी का चुनाव लड़ने का अपना अनुभव बताते हुए रामवती कहती हैं कि मैं हरिजन समुदाय से हूँ, जहां दो वक्त की रोटी का इंतज़ाम भी बड़ी मुश्किल से होता है। ऐसे में मेरे चुनाव के बारे में सोचने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। मैं मज़दूरी करके अपने परिवार का पेट पाल रही थी। एक सुबह मैं सोकर उठी तो देखा गांव के बड़े सम्मानित लोग मेरे दरवाज़े पर खड़े थे, मुझे बड़ा अचंभा हुआ। फिर वह सभी मुझसे चुनाव लड़ने की गुज़ारिश करने लगे। कह रहे थे कि इस बार गांव की सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है। मैंने उनसे कहा %बाबू लोगों, मुझे तो ठीक से अंगूठा लगाना भी नही आता! मैं भला कैसे प्रधानी संभाल पाऊंगी? उन्होने मुझे भरोसा दिलाया कि वह लोग सब संभाल लेंगे और मेरा कच्चा घर भी पक्का करवा देंगे। दूसरे बाबू ने तो यहां तक कहा कि बेटी का ब्याह करवाने में भी मदद करेंगे। अब जब कोइ बेटी के ब्याह करवा देने का वादा करे तो मैं कैसे पीछे हट जाती। उनके भरोसा दिलाने पर मैंने पंचायत चुनाव का पर्चा भर दिया और जीत भी गई। सरकार की नज़र में मैं प्रधान थी लेकिन हकीकत में बाबू लोग प्रधान रहे। रामवती ने अपना टूटा घर दिखाते हुए कहा कि नेताओं की तरह बाबू लोगों का भी, मेरा घर पक्का बनाने और बेटी के ब्याह में मदद का वादा केवल वादे तक ही सीमित रह गया।

हम अक्सर बहस के दौरान सुनते हैं कि पुरुषो के ही माध्यम से सही, अगर महिला को मौका मिल रहा है तो उनमें सामाजिक बदलाव की गुंजाइश कहीं न कहीं नजर आती है, लेकिन जब हम रमावती से बात कर रहे थे तो हमें वह गुंजाइश रत्ती भर नही दिखायी दे रही थी। रमा ने कहा जैसे मैं उनके खेत में मजदूरी करती हूं, वैसे ही मैंने पांच साल प्रधानी में भी एक तरह से मजदूरी ही की है। वह मुझे अपने साथ बैंक ले जाते थे, पैसे निकाल कर सब रख लेते थे मैं अंगूठा लगा कर मजदूरी लेकर चली आती थी। ना हमें उनसे कुछ पूछने की हिम्मत थी और न ही वह हमें कुछ बताने के इच्छुक होते थे।

गैर सरकारी संस्था दीपालया की असिस्टेंट मैनेजर अनीता राणा का कहना है कि समाज में अगर महिलाओं को वाकई अवसर देने हैं तो चुनाव में जनता द्वारा चुनी हुई महिलाओं को ही पंचायती बैठकों में जाने की अनुमति होनी चाहिए न कि उनके पतियों को। प्रधान पति जैसी संस्कृति पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाना बेहद जरूरी है। प्रशासनिक अधिकारियों को भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने, पंचायत में उनकी जिम्मेदारी और भागीदारी जैसे विषयों पर प्रशासन को समय समय पर कार्यशाला का भी आयोजन करवाया जाना चाहिए। यदि सही मायने में पुरुषों के वर्चस्व से महिलाओ को निकाल कर आत्मनिर्भर बनाना है तो उन्हें चुनाव के बाद कुछ समय निर्णय लेने से लेकर प्रधानी कैसे चलानी है, इसकी एक ट्रेनिंग भी दी जानी चाहिये जिससे वह बिना किसी पुरुष की सहायता से अपनी ज़िम्मेदारी बखूबी निभा सकें।

हालांकि पंचायत में महिला जनप्रतिनिधियों की सशक्त भूमिका से जुड़ी बहुत सी सकारात्मक कहानियां हमें पढ़ने को मिलती हैं। लेकिन जब हम इसकी ज़मीनी हकीकत को इसी जिले के दूसरे गांव में देखने पहुचते हैं तो वहां के दृश्य एकदम अलग पाते हैं। इंटरनेट और सरकारी फाइलों के आंकड़ो की दुनिया से बहुत अलग है वास्तविक दुनिया है। हम मेघपुर (बदला हुआ नाम) गांव की ग्राम प्रधान से मिलने पहुंचे। लेकिन उनकी जगह उनके पति से मुलाकात संभव हो सकी। उन्होंने यह माना कि सरकार द्वारा महिला सीट रखने की मंशा भले ही बहुत अच्छी हो, लेकिन हमारे जैसे पिछड़े और दलित समाज में जब जब सत्ता के लिए सीट रिजर्व होती है, हम सब बस एक कठपुतली ही होते हैं। सीट किसी की भी हो, गांव के आर्थिक रूप से संपन्न और ऊंची जाति के लोग ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पंचायत से जुड़े फैसले लेते हैं। ऐसी स्थिति में, मैं अपनी पत्नी की सीट को चला रहा हूँ। हमारे जैसे पिछड़े समाज में जब अभी पुरुष ही ऊंची जातियों के दबाव से नहीं निकल पाये हैं, ऐसी स्थिति में महिलाओं का आत्मनिर्भर होकर ग्राम प्रधानी में उतरना एक कोरी कल्पना मात्र है।

हमारे ज़ोर देने पर उन्होंने अपनी पत्नी को हमारे सामने बुलाया। वह सर पर पल्लू रखे घबराई हुई हमारे सामने आईं। जब हमने उनसे जानना चाहा कि उनके पति प्रधानी से संबंधित कोई निर्णय लेते समय उनसे सलाह लेते हैं? पहले वह काफ़ी देर तक बिना कुछ बोले खड़ी रहीं, फिर पति के सर हिलाने पर कठपुतली की तरह सर हिलाने लगीं। कुछ इस तरह सर को हिलते देख हमने अपने सिस्टम को हिलते देखा और समझा कि इस हिलते हुए सिस्टम को संभालने की ज़रुरत है। एक ऐसे पंचायती राज के निर्माण की ज़रूरत है, जहां केवल कागज़ पर ही नहीं बल्कि पंचायत भवन में बैठ कर गांव के विकास से संबंधित निर्णय लेते हुए भी महिला नज़र आये।

(यह आलेख संजॉय घोष मीडिया अवार्ड 2020 के अंतर्गत लिखा गया है)

भले ही देश की संसद में अब तक महिलाओं के 33त्न आरक्षण की मांग को पूरा करने में टालमटोल चल रही हो, लेकिन देश के पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33त्न आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। पंचायती राज मंत्रालय के आंकड़ों की माने तो देश के बहुत से राज्यों में महिलाओं के लिए आरक्षण 33त्न से बढ़ाकर 50त्न तक कर दिया है। हर दूसरे पद में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जा रही है। 73वें संविधान संशोधन 1992 के बाद से पंचायती राज में एक तिहाई आरक्षण को मंजूरी मिली बाद में जिसे बढ़ा कर कई राज्यों ने इसे पचास प्रतिशत तक किया है।

जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनकी सहायता की जरूरत

■ मोइन काजी

महामारी ने दुनिया भर में अभूतपूर्व संकट पैदा किए हैं। इसने उन लोगों पर बड़ा जुर्म ढाहा है, जो पहले से ही सबसे कमजोर थे। कम आय वाले परिवारों और छोटे व्यवसायियों के बीच कठिनाई और बेचैनी बढ़ी है। महामारी ने विषमताओं को और भी बढ़ा दिया है।

यह संकट एक बार फिर से सभी नागरिकों के लिए सार्वभौमिक बुनियादी आय यानी यूनिवर्सल बेसिक इनकम (यूबीआई) के विचार को सामने लाया गया है।

इसका विचार इतिहास में बार-बार सामने आया है। यह अठारहवीं शताब्दी में थॉमस पाइन के साथ शुरू हुआ। यह एक सरल सामाजिक नीति है, जिसमें लोगों को मामूली, नियमित और बिना शर्त नकद भुगतान देना शामिल है, इसके लिए कोई काम करने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में, इसका मतलब है राज्य से पैसा, सभी को सौंप दिया जाय और कोई सवाल नहीं पूछा गया।

यूबीआई का बड़ा उद्देश्य एक वित्तीय मंजिल का निर्माण करना है, जिसके माध्यम से कोई भी नागरिक गिर नहीं सकता है, और अनिश्चित और स्व-नियोजित के लिए जीवन का एक सभ्य मानक सीमेंट कर सकता है। यूबीआई प्राप्तकर्ता के व्यवहार से बंधा नहीं है, और वे अपनी इच्छानुसार पैसा खर्च करने के लिए स्वतंत्र हैं।

इसकी लागतों के अलग-अलग दर्शन हैं, इसे कैसे वित्तपोषित किया जा सकता है, कैसे अवधारणा को आधुनिक कल्याणकारी राज्यों में एकीकृत किया जा सकता है, और इसका श्रम बाजार पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।

लोगों के व्यवहार पर एक बुनियादी आय का क्या प्रभाव पड़ता है? क्या यह उन्हें स्वतंत्र या अधिक निर्भर बनाता है? क्या यह उन्हें बेदाग या आलसी छोड़ देता है? ऐसे कई सवाल हैं जिनका कोई स्पष्ट जवाब नहीं है।

अलग-अलग देशों के लिए यूबीआई में अंतर्निहित तर्क अलग हैं। एक समृद्ध समाज में, मुद्दा यह है कि कैसे लोग मजदूरी कमा सकते हैं जब रोबोट और कृत्रिम बुद्धि में उनके रोजगार लेने की संभावना है? भारत जैसे कम आय वाले देशों के सामने एक अलग सवाल है। क्या एक बुनियादी आय मौजूदा सामाजिक सुरक्षा जाल को बदल सकती है। नीचे दिए गए आंकड़े बताते हैं कि भारत पहले से ही सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में भारी निवेश करता है लेकिन प्रभाव और परिणाम में इसका असर ज्यादा नहीं है औइ इसमें सुधार की बहुत बड़ी जरूरत है। भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग दो प्रतिशत कोर सामाजिक संरक्षण और कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च करता है। रुपये में इसे बदलें तो 10,000 से अधिक कल्याणकारी योजनाओं में 9 लाख करोड रुपये सालाना खर्च होते हैं। यह राशि नौकरशाहों की एक सेना को बनाए रखने के लिए उच्च सेट-अप लागत और व्यय को कवर नहीं करती है। भारत की प्रमुख फ्लैगशिप कल्याण योजनाओं में से कुछ के लिए वार्षिक बजट लगभग चार लाख करोड़ रुपये (3,79,100 करोड़ रुपये) प्रति वर्ष है। इनमें मनरेगा, पीएम किसान सम्मान निधि योजना, और अन्य लोगों के बीच राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम शामिल हैं। इन कल्याणकारी योजनाओं के नेक इरादे के बावजूद, उन तक पहुंचना लाभार्थियों के लिए एक चुनौती बना हुआ हैं। बिना शर्त नकद हस्तांतरण को सबसे उचित, सबसे अधिक लागत प्रभावी और गरीबी को कम करने और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक माना जाता है। उनके पीछे यह विचार है कि शास्त्रीय विकास सहायता विफल हो गई है और यह कि प्रत्यक्ष मौद्रिक भुगतान समस्या को हल करने में सक्षम हो सकते हैं।

बायोमेट्रिक पहचान, वित्तीय समावेशन और मोबाइल पैठ के आगमन ने नकदी को घरेलू बैंक खातों में सीधे स्थानांतरित करने की गुंजाइश पैदा की है। डिजिटल भुगतान मोडलाल टेप से प्रभावित नहीं होता और बिचौलियों के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता है।

एक बड़ी और महंगी नौकरशाही या सहायता उद्योग पर निर्भर रहने के बजाय, गरीब घरों में सीधे पैसे और संसाधनों को स्थानांतरित करना बेहतर है ताकि वे गरीबी से बाहर निकलने के सबसे प्रभावी तरीके खोज सकें। लेकिन यह कभी-कभी भ्रष्ट निर्णय लेने की प्रक्रिया को ओवरहाल नहीं कर सकता है जो यह निर्धारित करता है कि पहली जगह में लाभ के लिए कौन पात्र है।

यूबीआई की एक मुख्य अवधारणा यह है कि यह सार्वभौमिक है, जिसका अर्थ है कि सभी नागरिक लाभार्थी होते है। भारत में एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाने के परिणामस्वरूप उच्च सरकारी व्यय होगा क्योंकि यह सुनिश्चित करना होगा कि किसी भी नागरिक को बाहर न रखा जाए। यूबीआई के अधिवक्ताओं ने कहा कि लागत को कम करने के लिए कर प्रणाली को फिर से तैयार किया जा सकता है।

पूंजी, बिजली, उर्वरक और पानी के लिए बेकार और प्रतिगामी कृषि सब्सिडी को एक साथ चरणबद्ध तरीके से समाप्त करना होगा।

यूबीआई से लगभग 78 प्रतिशत अतिरिक्त आबादी को लाभ प्रदान करने की आवश्यकता होगी जो गरीबी के दायरे में नहीं आते हैं। यदि हम अवधारणा की शुद्धता का पालन करते हैं और इसे सार्वभौमिक बनाते हैं, तो भारतीय संदर्भ में इसे पतला करने का एक बड़ा जोखिम है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को भुगतान की गई राशि लोगों के जीवन पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव डालने के लिए बहुत छोटी हो सकती है।

एक दृष्टिकोण भारत में मौजूदा सामाजिक कल्याण पारिस्थितिकी तंत्र के साथ यूबीआई को पूरक करना और इसे एक अर्ध-सार्वभौमिक बुनियादी ग्रामीण आय बनाना होगा। सामाजिक संरक्षण मौजूदा कार्यक्रमों का पूरक होगा। हालांकि, यह मौजूदा जीडीपी का 13 प्रतिशत तक होगा और इसलिए, यह संभव नहीं है। **(संवाद)**

यूबीआई की एक मुख्य अवधारणा यह है कि यह सार्वभौमिक है, जिसका अर्थ है कि सभी नागरिक लाभार्थी होते है। भारत में एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाने के परिणामस्वरूप उच्च सरकारी व्यय होगा क्योंकि यह सुनिश्चित करना होगा कि किसी भी नागरिक को बाहर न रखा जाए। यूबीआई के अधिवक्ताओं ने कहा कि लागत को कम करने के लिए कर प्रणाली को फिर से तैयार किया जा सकता है।

पावन प्रसंग

सफलता का रहस्य

एक बार की बात है । एक गाँव में प्रज्ञा प्रकाश नाम के एक विद्वान महोदय रहते थे । धन – धान्य से संपन्न तो थे ही लेकिन ज्ञान उनके पास इतना था कि दूर – दूर से लोग अपनी समस्याओं का समाधान करने उनके पास आते थे । सभी उनको गुरूजी कहकर संबोधित करते थे ।

एक दिन एक नवयुवक गुरूजी के पास आया और बोला – 'गुरूजी मुझे सफलता का रहस्य बताइए, मैं चाहता हूँ कि मैं भी आपकी तरह विद्वान बनकर अपनी गरीबी दूर कर सकूँ ।'

गुरूजी मुस्कुराएँ और उन्होंने उसे दूसरे दिन प्रात:काल नदी किनारे मिलने के लिए बुलाया । युवक को भी नहाना था इसलिए वह भी अपने वस्त्र लेकर प्रात:काल नदी किनारे पहुँच गया ।

गुरूजी उस युवक को नदी के गहरे पानी में ले गये और जहाँ पानी गले के ऊपर निकल गया तो उन्होंने उसे डुबो दिया । थोड़ी देर युवक छटपटाया फिर उन्होंने उसे छोड़ दिया । युवक हांफता – हांफता नदी से बाहर भागा । जब उसे सुध आई तो बोला – 'आप मुझे मारना क्यों चाहते है ?'

गुरूजी बोले – 'नहीं भाई, मैं तो तुम्हे सफलता का रहस्य बता रहा था । अच्छा बताओ ? जब मैंने तुम्हारी गर्दन पानी में डुबो दी थी, उस समय तुम्हें सबसे ज्यादा इच्छा किस चीज की हो रही थी ?'

युवक बोला – 'साँस लेने की ।'

गुरूजी बोले – 'बस यही सफलता का रहस्य है । जब तुम्हें सफलता के लिए ऐसी ही उत्कंठ इच्छा होगी, तब तुम्हें सफलता मिल जाएगी । इसके अलावा और कोई रहस्य नहीं है ।'

आपके पत्र

अच्छा मतदान, जोश का प्रतीक !

पिछले कई वर्षों से गिरते मतदान के रुझान में भी अभी बंगाल और असम में विधानसभा चुनाव के पहले चरण में 80 और 77 फ़ीसदी मतदान हुआ है जिसे इस हालात में अच्छा ही माना जा सकता है। बड़ी हिंसा और जहरीली हिंसक भाषा के बाद भी बेचारी जनता ने पूरे जोश से अपना फर्ज निभाया है जिसके लिए वह धन्यवाद की पात्र और प्रशंसनीय है। यह भी सही है कि जोश में होश भी बहुत जरूरी है। यह मतदान किसी हद तक बड़े बदलाव का भी सूचक है क्योंकि केंद्र और इन राज्यों में सत्ता विरोधी लहर का पूरा असर हो सकता है जिससे कांग्रेस और साम्यवादी पार्टियों आदि को भी अच्छा लाभ मिल सकता है। उस हालात में तो त्रिशंकु विधानसभा की भी आशंका है।

महंगाई, बेरोजगारी, बढ़ती जनसंख्या और निजीकरण आदि से त्रस्त और आक्रोशित जनता को देखते हुए तो देश के हालात वास्तव में बहुत ही चिंताजनक हैं। इसलिए ऐसे हालात में बहुत बड़ा आश्चर्य भी हो सकता है। सही तस्वीर तो चुनाव नतीजों के बाद दो मई को ही साफ़ होगी जिसका पूरे देश को बड़ी बेसब्री से इन्तजार है।

■ वेद मामूरपुर, नरेला

प्रकाशक, मुद्रक : राजीव रंजन श्रीवास्तव द्वारा पत्रकार प्रकाशन प्रा. लि. के लिए 506, आई.एन.एस. बिल्डिंग, 9, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित एवं बीएफएल इंफोटेक लि., सी 9, सेक्टर-3, नोएडा से मुद्रित। सम्पादक : राजीव रंजन श्रीवास्तव, (पी.आर.बी. एक्ट के तहत समाचार चयन के लिए जिम्मेदार)। आर.एन.आई. नं. DELHIN/2008/24216. दिल्ली कार्यालय :फोन: 011-23718195,23357784, फैक्स: 011-43581404, नोएडा कार्यालय: फोन: 0120-4114404 फैक्स: 0120-4273770 ई-मेल: deshbandhudelhi@gmail.com वेब: www.deshbandhu.co.in